Journal of Socio-Educational & Cultural Research, Vol. 2, No. 5, July-December, 2016 ISSN : 2394-2878

लोक संस्कृति
(एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)

डॉ0 राकेश प्रताप शाही*

भारतीय वाङ्गमय में ''वेद'' और ''लोक'' शब्द दो विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक समुदायों को शिष्ट सभ्य समुदाय को तथा आदिम–अर्द्धसभ्य समुदाय को द्योतित करते हैं। लोक शब्द उस जनसमुदाय का वाचक है जो साज–सज्जा, सभ्यता, शिक्षा, परिष्कार, दिखावा आदि से दूर आदिम मनोवृत्तियों के अवशेषों से युक्त परिधि को समेटकर, दिखवा संस्कृति अथवा समाज एक चिर–परिचित शब्द है। इस शब्द के उच्चारण मात्र से जनजीवन का चित्र, उसकी संस्कृति की झाँकी हमारी आँखों के सामने उपस्थित हो जाती है।

लोक शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है, एक ओर तो यह शब्द अपने में विश्व अथवा समाज को समेट लेता है, तो दूसरी ओर जन सामान्य को अर्थ का भी सूचक है। लोक शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। सिद्धान्त कौमुदी में लोक शब्द दर्शनें धातु से 'घञ्' प्रत्यय करके निष्पन्न बताया गया है। इसका धात्वर्थ 'देखना' है। इसके लट् लकार में अन्य पुरूष एकबचन का रूप 'लोकते' बनता है। इस प्रकार लोक शब्द का मूलार्थ हुआ– देखने वाला और इस कार्य को करने वाला सम्पूर्ण जनवर्ग लोक सेवक हुआ। प्राचीन साहित्य ऋग्वेद में भी लोक शब्द का प्रयोग हुआ है और वहाँ इसे जन का समानार्थी बताया गया है। ऋग्वेद में प्रयुक्त 'देहि लोकम्' के अनुसार लोक का स्थान के अर्थ में भी में एक प्रयोग मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद में लोक शब्द का अर्थ जीवन तथा स्थान दोनों अर्थों में किया जाता है। यजुर्वेद में लोक समाज की एक विराट कल्पना की गयी है, वह पुरूष रूप ईश्वर है, उसके सहस्रों मुख, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पद हैं। यह लोक अनेक अर्थों में परिव्याप्त है– ''बहु व्याहितों वा अयं बहुलो लोकः।'' हिन्दी मानक कोश में इसके अर्थगन विस्तार का क्रम इस प्रकार किया गया है–

1. स्थान विशेष या निवास स्थान, 2. संसार जगत, 3. प्रवेश, 4. लोक जन, 5. समाज, 6. प्राणी, 7. यश–कीर्ति।

लोक शब्द के इस अर्थ रूपों में दो मुख्य रूप प्रस्थापन या प्रदेश और जन सामान्य वर्ग इस सन्दर्भ में अभिप्रेत है। प्रथम रूप उपनिषदों में वर्णित इस लोक, परलोक की कल्पना द्वारा चरितार्थ हुआ है। किन्तु द्वितीय रूप में जनसामान्य लोक समुदाय का बोधक है जो यहाँ वांछित है, उससे प्रदेश निवासी जन या जन–सामान्य लोगों का बोध होता है। लोक शब्द का यही अर्थ अंग्रेजी 'फोक' की अर्थ प्रकृति के निकट है, जो यौगिक तथा विशेषण दोनों रूपों में विशिष्ट साहित्य, विज्ञान, शास्त्र, कला आदि के साथ सम्बद्ध होने पर विशिष्ट अर्थों की प्रतीति करता है। विश्व का कोई विशिष्ट भाग या स्थान जिसमें कुछ अलग प्रकार के जीव या प्राणी रहते हैं जैसे– जीव लोक, देव लोक, ब्रह्मलोक, मनुष्य लोक आदि। पुराणानुसार किसी देवता के रहने का वह स्थान जहाँ मरने पर उसके भक्त जा कर रहते हैं, वह लोक है। निरूक्त में लोक शब्द का प्रयोग पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं द्युलोक के अर्थ में हुआ। महाभारत में लोक शब्द का प्रयोग साधारण जनता के अर्थ में हुआ है। श्रीमद्भागवतगीता में लोक का अर्थ संसार या तीनों लोक के रूप में हुआ है। अशोक के शिलालेख में लोक शब्द का उल्लेख मिलता है। यहाँ पर लोक समस्त जनता का भाव प्रकट करता है।

भारतीय लोक जीवन का इतिहास बड़ा प्राचीन और सुदीर्घ है। शताब्दियों से जो कुछ हमने चिन्तन किया और उस चिन्तन को कार्य रूप में परिणत किया वह हमारी रहनी, सहनी, करनी, रीति–रिवाज और व्यवहार सभी कुछ लोक जीवन है। लोक जीवन ही लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है। लोक जीवन एवं लोक संस्कृति की पुण्य सलीला भागीरथी युग–युग से प्रभावित है और प्रवाहित रहेगी। इसका स्रोत लोक जीवन है। लोक संस्कृति राष्ट्र का अमर रूप है। लोक साहित्य में प्रस्फुटित लोक संस्कृति 'बहुजन हिताय' तथा 'बहुजन सुखाय' मानी गयी इसकी विश्वव्यापिनी परिधि में सब जड़–चेतन

* **समाजशास्त्र विभाग, श्री भगवान महावीर पी0 जी0 कालेज, पावानगर (फाजिलनगर) कुशीनगर, उ0प्र0**

समाहित हुए हैं। पौराणिक काल में लोक शब्द का प्रयोग भू–लोक, भुवर्लोक, स्वर्ग लोक, महालोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक के अर्थ में पाया जाता है। पौराणिक काल के अनन्तर इस शब्द का प्रयोग अतल, वितल, गभिस्तमान, तल, सुतल और पाताल के अर्थों में किया गया है। आधुनिक युग में इस शब्द का प्रयोग जन, जनता या सर्व साधारण के रूप में हो रहा है। आप्टे की संस्कृत–अंग्रेजी डिक्शनरी में बताया गया है कि भारतीय साहित्य में लोक और वेद का कुछ विभेद होता है।

यहाँ लोक परिपाटी और वेद परिपाटी जैसे दो भिन्न स्थल मिलते हैं। इंग्लिश–संस्कृत डिक्शनरी में फोक का अर्थ लोक या प्रजा बताया गया है। हिन्दी साहित्य कोश में लोक का अर्थ संसार और जन सामान्य दोनों से लिया गया है। इसमें कहा गया है कि शब्द कोशों में लोक शब्द के बहुत अर्थ मिलते हैं, किन्तु इसमें मुख्यतः दो अर्थ ही विशेष प्रचलित हैं, पहला इहलोक, परलोक और त्रिलोक तथा दूसरा अर्थ जन सामान्य है। सन्त साहित्य में लोक शब्द का व्यवहार परम्परा से अनेक अर्थों और सन्दर्भों में चला आ रहा है। ओमप्रकाश शर्मा ने लिखा है कि : परम्परा का सबसे प्रचलित अर्थ लोक का है– ''संसार'' और इस अर्थ में इस शब्द के प्रयोग का सन्त साहित्य में अत्यधिक व्याप्ति है। लोक वार्ता विज्ञान के पंडित सत्येन्द्र का विचार है कि लोक का अर्थ जन सामान्य में प्रचलित रीति–रिवाज एवं उनके विश्वास तथा अन्ध परम्पराओं आदि से लिया गया है। लोक एवं वेद का अन्तर स्पष्ट करते हुए इन्होंने कहाँ है कि वेद में यह स्पष्टतः नहीं है, वह यदि लोक में हो अथवा जो वेद में है उसके अतिरिक्त लोक में हो, वह लौकिक हैं। लोक मानव समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पांडित्य चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है तथा जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश में फोक का अर्थ जन साधारण से लिया गया है। अधिकांश विद्वानों ने हिन्दी के लोक को अंग्रेजी के FOLK का प्र्यायवाची माना है। इन लोगों के अनुसार फोक की उत्पत्ति FOLK से हुई है। यह एंग्लोसेक्शन शब्द है जो जर्मनी में VOLK रूप में प्रचलित है। आंग्लभाषी प्रयोग की दृष्टि में फोक असंस्कृत और भद्र समाज अथवा जाति का द्योतक है, किन्तु सर्व साधारण और राष्ट्र के लोगों के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है, जो इसके संकुचित अर्थ का बोध कराता है। फोक शब्द असंस्कृत लोगों के लिए व्यवहरित करने वाले लोगों में प्रो0 चाइल्ड, किटेरेज, सिजविक, गुमेर व लूसी पौड आदि प्रमुख हैं। कविता कौमुदी में अंग्रेजी के फोक शब्द का पर्यायवाची 'लोक' शब्द है। वैसे इसके लिए हिन्दी में 'ग्राम' और 'जन' शब्द का भी प्रयोग होता है। श्याम परमार के अनुसार ''जन'' शब्द का काफी प्राचीन है। संस्कृत तथा पाली ग्रन्थों में मानव समाज का बोध जन शब्द से कराया जाता है।

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि लोक शब्द का प्रयोग मानवी अर्थ में किया जाता है जो एक विशेष प्रकार के मानव समाज को द्योतित करता है। प्रत्येक देश और समाज की संस्कृति की आधार शिला वहाँ का लोक समाज होता है। लोक जीवन में प्राचीन संस्कृति अपने मांगलिक रूप में पायी जाती है। जबकि शिष्ट समाज में इसका परिष्कृत रूप सभ्यता का आवरण धारण करके प्रकट होता है। लोक जीवन का आधार होता है श्रद्धा और विश्वास, जबकि शिष्ट जीवन बुद्धि पर आधारित होती है। ऐनसाइक्लोपिडिया ब्रिटैनिका के अनुसार फोक का तात्पर्य आदिम जाति के लोगों का समुदाय है। इसका सामान्य प्रयोग संकुचित अर्थ में नागर संस्कृति और शिक्षा के अछूते निरक्षर या अल्पसाक्षर ग्रामीण अथवा जनपदीय निवासियों के लिए होता है। लोक साहित्य का सामान्य अर्थ ग्राम्य था। जनपदीय होते हुए दूर–दूर के अंचलों तक विस्तृत व समग्र मानव समाज है, जो अपनी परम्परावद्ध प्रथाओं, मान्यताओं, जीवनविधियों, अन्धविश्वासों की रूढ़ियों के साथ आदिम संस्कारों को संजोये हुए उसके प्रति प्रतिबद्ध तथा आस्थाशील है एवं आधुनिक सभ्यता से प्रभावी होने के कारण अशास्त्रीय, निरक्षर अथवा अल्पसाक्षर या पिछड़ा हुआ माना जाता है। इसी अर्थ में लोक को परलोक का पयार्यमाना गया है। डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बताया है कि लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों व गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर के परिष्कृत रूचि संम्पन्न, सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्थ होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जिन्दा रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं, उनकों उत्पन्न करते हैं। सर्व प्रथम

जॉनआब्रे ने सन् 1687 में सर्व साधारण जनता के रीति–रिवाज, रहन–सहन और अन्धविश्वास आदि का अध्ययन प्रारम्भ किया। डा0 बासुदेवशरण अग्रवाल कहते हैं कि लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। श्यामपरमार का कहना है कि लोक साधारण जनसमाज है, जिसमें भू–भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग–भेद से रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता, संस्कृति के कल्याणमय विवेचन का द्योतक है। भारतीय समाज में नगरीय एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का उल्लेख किया जाता है, किन्तु लोक दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है, वही समाज का गतिशील अंग है। विश्वभारती शान्ति निकेतन के उड़िया विभाग के अध्यक्ष कुंज बिहारी दास ने लोक शब्द की गम्भीर व्याख्या की है। आपके अनुसार लोक उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रवाहों से बाहर रह कर या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं। डा0 दास की इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं, उन्हें लोक कहा जा सकता है। साधारणतः ग्राम्य या जनपद में निवास करने वाली जन साधारण या जनसामान्य कहलाती है, किन्तु मात्र इतना कह देने से इसके अर्थ की व्यापकता पर प्रकाश नहीं पड़ता। यद्यपि नगरों, टापूओं, पहाड़ों, जंगलों आदि में निवास करने वाले वैसे व्यक्ति जनसामान्य अथवा लोक मानव कहे जा सकते हैं जो परम्परा प्रथित रीति–रिवाजों, आदिम विश्वासों एवं अन्ध परम्पराओं के प्रति आस्थावान हो। कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार लोक संस्कृति तथा लोक साहित्य अत्यन्त प्राचीन जान पड़ते हैं। भारतीय साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल से इस देश में संस्कृति की दो पृथक धाराएं चल रही थीं– शिष्ट संस्कृति से जो बौद्धिक विकास के उच्चतम शिखर पर पहँचा हुआ था, जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद या शास्त्र था। लोक संस्कृति से हमारा अभिप्रायः जनसाधारण की उस संस्कृति से है, जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी, जिसकी उत्स भूमि जनता थी और जो बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर उपस्थित थी। यदि ऋग्वेद और अथर्ववेद का सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो यह पार्थक्य स्पष्ट हो जाता है। प्रो0 बलदेव उपाध्याय का कहना है कि लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया कलापों की पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है। इस दृष्टि से अथर्ववेद, ऋग्वेद का पूरक है। ये दोनों संहिताएँ दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचायिकायें होती हैं तो ऋग्वेद शिष्टसंस्कृति का। अथर्ववेद में विचारों का धरातल सामान्य जनजीवन से है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जनजीवन से। त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने लोक–संस्कृति के मूल तत्वों की व्याख्या इस प्रकार की है– भिन्नता में एकता, वाह्य रूप में परिवर्तन परन्तु तात्विक स्थिरता, मानवता एवं सहिष्णुता, प्रकृति से अभिन्न सम्बन्ध, सत्य परिपालन, विद्या और कला की उन्नति, आध्यात्मिक विकास, तत्वों का समय–समय पर अविर्भाव, ज्ञान की पिपासा, प्रजापालक शासन आदि।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

मानवशास्त्र तथा समाजशास्त्र में ग्रामीण समुदाय के अध्ययन में लोक संस्कृति की अवधारणा का प्रयोग खुल्लम–खुल्ला तथा व्यापक अर्थ में किया गया है। अधिकांश विद्वानों ने इस अवधरणा को महत्व देते हुए स्वीकार किया है कि लोक संस्कृति ही ग्रामीण समुदाय की आत्मा है और यही उसका पर्यायवरण है। ऐतिहासिक आधार पर देखने पर स्पष्ट होता है कि आदि काल से ही मानव समाज दो भागों में विभक्त रहा है–

(अ) प्रथम वह जिसमें परम्परागत आधार पर सरल जीवन व्यतित करने वाले अशिक्षित व्यक्ति निवास करते थे।

(ब) दूसरा वह भाग जिसमें व्यक्तियों को तुलनात्मक रूप से उन्नत पर्यायवरण के साथ ही विशेष शिक्षा–दीक्षा प्राप्त होती थी।

प्रथम समाज को हम लोक समाज कहते हैं, जबकि दूसरे की प्रकृति उससे पूर्णतया भिन्न रही है। इन दोनों समाजों में रहन–सहन, आचार–विचार और रूढ़ियों में स्पष्ट भिन्नता विद्यमान रही है,

उच्चस्तरीय लोगों में शिष्टाचार की प्रधानता होती है। जबकि लोक समाज में लोकाचारों की प्रधानता होती है। लोकाचार प्रधान लोगों की संस्कृति से सम्बद्ध व्यक्तियों की संख्या कहीं अधिक होती है तथा यह संस्कृति ऐसे लोगों की संस्कृति मानी जाती है, जिसमें एक समुचित तथा व्यवस्थित शिक्षा–दीक्षा का अभाव होता है।

ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्न्तगत एक व्यवस्थित अवधारणा के रूप में लोक संस्कृति को प्रतिपादित करने का श्रेय राबर्ट रेडफील्ड को है। रेडफील्ड ने आरम्भ में लोक समाज की अवधारणा के लिए 'कृषक संस्कृति' शब्द का प्रयोग किया था। कुछ समय पश्चात् जार्ज फास्टर ने ग्रामीण विशेषताओं से युक्त संस्कृति को लोक संस्कृति के नाम से संबोधित किया, जिसे बाद में रेडफील्ड ने भी स्वीकार कर लिया।

अतः स्पष्ट है कि रेडफील्ड की रचनाओं में लोक संस्कृति तथा कृषक संस्कृति शब्दों प्रयोग समान अर्थों में ही हुआ है। लेविस ने मैक्सिकों तथा भारत के दो गाँवों का अध्ययन करके लोक संस्कृति के अवधारणा को स्पष्ट किया है।

वर्तमान ग्रामीण अध्ययनों में लोक संस्कृति की अवधारणा को इतना महत्वपूर्ण समझा जाने लगा है कि इसके अभाव में ग्रामीणों के व्यवहारों तथा मनोवृत्तियों को समुचित रूप से नहीं समझा जा सकता। लोक संस्कृति के सन्दर्भ में रेडफील्ड का मनना है कि नगरीय समाज से भिन्न विशेषताएँ प्रदर्शित करने वाले समाज को हम लोक समाज कहते हैं। लोक समाज एक ऐसा समाज है जिसका आकार छोटा है तथा जिसके अन्तर्गत व्यवस्थित शिक्षा का अभाव, सदस्यों के व्यवहारों में समरूपता, रूढ़िवादिता तथा सामूहिक दृढ़ता की विशेषताएँ पाये जाती है। इस समाज में व्यक्तियों के व्यवहार कानून से उतने प्रभावित नहीं होते जितने कि परम्पराओं तथा धार्मिक नियमों से प्रभावित होते हैं। यहाँ बुद्धिजिवी जैसा न तो कोई पृथक वर्ग होता है और नहीं वैज्ञानिक चिन्तन का प्रभाव होता है। डा0 सम्पूर्णानन्द का कहना है कि लोक संस्कृति वह जीवित तथ्य है, जिसके माध्यम से ग्रामीण जीवन की आत्मा स्वयं को अभिव्यक्ति करती है। यह कथन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोंण से भले ही स्वीकृत न हो, लेकिन यह लोक संस्कृति के प्रभाव तथा महत्व को अवश्य स्पष्ट करता है। जी0एम0 फास्टर ने अपनी पुस्तक– 'लोक संस्कृति क्या है' 1953 में लिखा है कि लोक संस्कृति को जीवन की एक ऐसी सामान्य विधि के रूप में समझा जा सकता है जो एक क्षेत्र विशेष के बहुत से गाँवों, कस्बों तथा नगरों के कुछ या सभी व्यक्तियों की विशेषता के रूप में स्पष्ट होती है तथा लोक समाज उन व्यक्तियों का एक संगठित समूह है, जो एक लोक संस्कृति से बद्ध होता है। इस परिभाषा के आधार पर कहाँ जा सकता है कि निःसन्देह लोक संस्कृति एक जीवन शैली है, जो सभी समाजों में किसी न किसी रूप में अवश्य पायी जाती है। मूल्यांकन की दृष्टि से इसका स्थान कुछ भी हो सकता है। मगर इसकी महत्ता को इनकार करना किसी भी समाज के लिए सम्भव नहीं है, जो इसकी व्यापकता का प्रमाण है। इसे किसी भी राष्ट्र की जीवनी शक्ति के रू॰ में स्वीकार किया जा सकता है। लोक संस्कृति के अन्तर्गत धार्मिक विश्वास, धार्मिक आचरण, कर्मकाण्डों की पूर्ति, ज्ञान, व्यवहार के तरीके, कला, लोक गाँथाएं तथा चिन्तन किसी न किसी धर्म ग्रन्थ अथवा स्थानीय परम्पराओं से प्रभावित होते हैं।

यह विशेषताएं मौलिक परम्पराओं के रूप में एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को हस्तानान्तरित होती रहती है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री टॉनिज ने समाज को दो रूपों में वर्गीकृत किया है, पहला समाज और दूसरा समुदाय। आप ने इस वर्गीकरण के आधार पर यह बताया है कि प्राचीन समय में समाज के संगठनों का रूप बहुत साधारण था, जबकि आधुनिक समय में यह रूप अधिक जटिल होता जा रहा है। हम कह सकते हैं कि टॉनिज के इस वर्गीकरण का उद्देश्य लोक समाज तथा सभ्य समाज की ओर संकेत करना है। समाजशास्त्र के प्रारम्भिक गुरू दुर्खीम ने अपनी रचना 'समाज में श्रम विभाजन' में दो प्रकार के सामाजिक संगठनों का उल्लेख किया है। एक यांत्रिक एकता और दूसरा सावयवी एकता वाला समाज। यांत्रिक एकता प्राचीन मनोवृत्तियों वाले आदिम समाजों में और सावयवी एकता आधुनिक समाजों में पायी जाती है। इस वर्गीकरण से भी स्पष्ट होता है कि दुर्खीम ने भी परम्परागत तथा आधुनिक समाजों के महत्व को स्वीकार किया है। इस प्रकार रेडफील्ड, टॉनिज तथा दुर्खीम आदि के विचारों के आधार पर संयुक्त रूप से कहा जा सकता है कि लोक समाज की उत्पत्ति प्राकृतिक कारकों का परिणाम

है। ऐसे समाज का आधार नातेदारी, मित्र समूह और पड़ोस है। ऐसे समाज में विभिन्न कार्य लोक रीतियों, रूढ़ियों तथा धर्म पर आधारित होते हैं, ऐसे समाज की लोगों की संस्कृति को लोक संस्कृति का नाम दिया जाता है।

हमारे आदिकालीन सामाजिक चिन्तन का मूल आदि ग्रामों में रहने वाले व्यक्तियों द्वारा रचित लोक गीतों तथा कहानियों, पहेलियों एवं लोकोक्तियों तथा कथा वार्ताओं के रूप में प्रचलित रहा है, जो मौखिक साहित्य के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा है एवं वह किसी व्यक्ति विशेष के नाम से प्रचलित नहीं रहा है। ग्रामवासियों में परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से चले आ रहे सामाजिक चिन्तन की इस श्रृंखला को विद्वानों ने 'लोक वार्ता' का नाम दिया है। यही लोकवार्ताएं हमारे साहित्य का आदि रूप हैं, जो हमारे सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमानों, आदर्श एवं मूल्यों को अपने में समाहित किये हुए हैं। ऐनसाइक्लोपीडिया अमरिकन का कहना है कि साहित्य का वह आदि रूप जो मानवीय चेतना की अलिखित सृष्टि के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तानान्तरण के द्वारा जीवित रह कर नृत्य, संगीत, विनोद एवं परम्परागत कथाओं के रूप में अभिव्यक्त होता रहा है, लोक वार्ता कहलाता है। रामनन्द तिवारी का कहना है कि लोक संस्कृति, संस्कृति का लोकप्रिय और जीवन्त रूप है।

मुख्य रूप से लोक संस्कृति में निम्नलिखित मूल तत्व समाहित होते हैं–

- ❖ भिन्नता में एकता।
- ❖ बाह्य रूप में परिवर्तन पर तात्विक स्थिरता।
- ❖ मानवता और सहिष्णुता।
- ❖ प्रकृति की उपासना।
- ❖ अमर सत्य, जो सदा सरल होता है, पालन।
- ❖ सब प्रकार की सद् विद्या और कला कौशल की उन्नति।
- ❖ आध्यात्मिक विकास।
- ❖ सन्तों, तत्व ज्ञानियों, महापुरूषों का युग–युगान्त में अटूट प्रादुर्भाव।
- ❖ ज्ञान की पिपासा और वह जहाँ से प्राप्त हो उसका ग्रहण।
- ❖ प्रजा पालक शासन।

उपर्युक्त लोक संस्कृति के मूल तत्वों के आधार पर हमें लोक संस्कृति के अन्तर्गत कुछ विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं–

- ❖ लोक संस्कृति मनुष्य द्वारा अर्जित होती हैं।
- ❖ लोक संस्कृति अगतिशील होती हैं।
- ❖ लोक संस्कृति मनुष्य तथा समाज के बीच स्थायी रूप से विद्यमान रहती है।
- ❖ लोक संस्कृति लिपिबद्ध नहीं होती है।
- ❖ लोक संस्कृति में निर्माणक ईकाइयाँ बहुत सरल होती हैं।
- ❖ लोक संस्कृति में व्यावसायीकरण का अभाव होता है।
- ❖ लोक संस्कृति कृषक जीवन पर आधारित होती है।
- ❖ लोक संस्कृति का अपना एक स्थानीय स्वरूप होता है।
- ❖ लोक संस्कृति में सृजनात्मकता की शक्ति होती है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. सिद्धान्त कौमुदी : 417, व्यंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
2. ऋग्वेद : य इमे रोदसी उमे अहर्भिदभतुष्टवयं।
   विश्वामित्रस्य रक्षित ब्रह्ममेदं भारतं जनं।। ।।3/53/12।।
3. यजुर्वेद : सहस्र शीर्षा पुरूषा, सहस्राक्षाः सहस्र पात।।31।। 10/90
4. सम्पादक रामचन्द्र वर्मा : हिन्दीमानक कोश, प–ल, पृ0 596
5. श्रीचन्द्र जैन : लोक कक्षा विज्ञान, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1976, पृ0 134–35
6. महाभारत : आदि पर्व, 1/48

7. श्रीमद्भागवद्गीता : 3/3, 3/22, 3/24
8. अशोक के शिलालेख : पृ0 177, गिरिनार में, 14 अनुक्तरासव लेकहिताय गिरिनार कतर्व्यहि में सर्व लोक हित, पृ0 10 174
9. त्रिलोकी नारायण दीक्षित : सन्त काव्य में लोक संस्कृति, ''समाज'' अक्टूबर, 1958, पृ0 45
10. श्रीचन्द्र जैन : लोक कथा विज्ञान, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1976, पृ0 134–35
11. आप्टेक : संस्कृत–अंग्रेजी डिक्शनरी
12. इंग्लिश–संस्कृत डिक्शनरी : 1964, पृ0 281
13. हिन्दी साहित्यकोश : भाग–1, पृ0 686
14. हिन्दी अनुशीलन : वर्ष 14, अंक2, अप्रिल–जून 1961
15. ओमप्रकाश शर्मा का निबन्ध : संत साहित्य में प्रयुक्त लोक शब्द
16. डॉ0 सत्येन्द्र : लोक साहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1962, पृ0 2–3
17. मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1971, पृ0 533
18. कविता कौमुदी : भाग 5 का उप–शीर्षक 'ग्राम्यगीत'
19. श्यामपरमार : भारतीय लोक साहित्य, पृ0 12
20. ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका : डॉ0 सत्येन्द्र द्वारा अनुदित लोक साहित्य विज्ञान, पृ0 3
21. डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी : जनपद त्रयमासिक, खण्ड–1, अंक 1, लोक साहित्य का अध्ययन, पृ0 65–66
22. मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1971, पृ0 533
23. डा0 बासुदेव शरण अग्रवाल : लोक संस्कृति विशेषांक, भाग 47, अंक 2, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पृ0 65
24. डा0 श्यामपरमार : भारतीय लोक साहित्य, पृ0 10–11
25. द पीपुल लिभ इन मोर आर लेस प्रिमिटिव कडिसन आउट साइड द स्फियर ऑफ सेमेस्टीकेटेड इन फ्लूऐंसेज, डा0 कुंज बिहारी दास।
26. डा0 कृष्ण देव उपाध्याय : हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग–16, प्रस्तावना, पृ0 4, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
27. बलदेव उपाध्याय : समाज (काशी विद्यापीठ) वर्ष–4, अंक–3, 1958, पृ0 446
28. त्रिलोकी नारायण दीक्षित : संत काव्य में लोक संस्कृति, समाज, अक्टूबर 1958, पृ0 451
29. राबर्ट रेडफील्ड : फोक कल्चर ऑफ यूकेशन, शिकागो प्रेस, 1941, पृ0 163
30. जार्ज एम0 फास्टर : ह्वाट् इज द फोक कल्चर, अमरिकलन ऐन्थ्रोपोलाजिस्ट, वैलूम–2, पार्ट–1, अप्रैल–जून 1953, पृ0 139
31. ऑस्कर लेबिस : पिजेन्ट कल्चर इन इण्डिया एण्ड मैक्सिको
32. मॉरिस ओपलर और आर0डी0 सिंह : टु विलेजेज ऑफ उत्तर प्रदेश
33. रावर्ट रेडफील्ड : पूर्वोक्त
34. जार्ज एम0 फास्टर : पूर्वोक्त
35. फर्डिनेण्ड टॉनीज : कम्युनिटी एण्ड सोसाइटी, 1957
36. इमाइल दुर्खीम : द डिविजन ऑफ लेबर इन सोसाइटी, फ्री प्रेस, 1947
37. एन साइक्लोपीडिया अमरिकन : वैलून–11, अमरिकन कॉर्पोरेशन, न्यूयार्क, पृ0 492
38. डा0 रामानन्द तिवारी : हमारी जीवन्त संस्कृति, पृ0 18